अध्याय 20

दस आज्ञाएँ और वाचा की पुस्तक (भाग 1)

जब परमेश्वर ने वाचा के एक सम्बन्ध में इस्राएल को निमन्त्रण दिया उसके बाद लोग इस बात के लिए सहमत हो गए कि जैसा उसने आदेश दिया उस प्रकार वे उसकी आज्ञा को मानेंगे (19:8)। अध्याय 20 में परमेश्वर ने अपनी वाचा की माँगें उन्हें बता दी। पहले 20:1-17 में उसने उन्हें दस आज्ञाएँ दी। फ़िर 20:22 के आरम्भ में "वाचा की पुस्तक" दी (20:22-23:33)।

दस आज्ञाएँ (20:1-17)

सीनै पर्वत पर दी गई दस आज्ञाएँ, इस्राएल के साथ परमेश्वर की वाचा की प्रथम शर्तें थी। वे शेष व्यवस्था के मूलभूत सिद्धान्त और प्रतिनिधि थीं। दस आज्ञाएँ स्वभाव में "बिना विवाद के सुनिश्चित" हैं अर्थात वे नैतिक रूप से शुद्ध नियम हैं ("तुम ऐसा करो" अथवा "तुम ऐसा नहीं करो")। यह वैध रूप "वाचा की पुस्तक" में पाए जाने वाले अनेक नियमों के साथ अन्तर रखता है जो कि "सुनिश्चित किए गए भाग में परिवर्तन" है। वे विशेष आज्ञाएँ शर्तों के साथ है जो विशेष परिस्थितियों के साथ व्यवहार करती हैं ("अगर ... तब")।

दस आज्ञाओं को "डेकालोग" भी कहा जाता है। यह पद, इब्रानी पद הַדְּבָרִים עֲשֶׂרֶת *(असेरेत हद्देबारिम)* के एक साहित्यिक प्रदर्शन से प्राप्त होता है जो पंचग्रन्थ (34:28; व्यव. 4:13; 10:4) में पाँच बार आता है। सेप्टुआजिंट इस पद का अनुवाद δέκα λόγους *(डेका लोगौस)* के रूप में करते हैं; इसका अक्षरशः अर्थ है "दस शब्द।" अनेक आज्ञाएँ देने से परे, हो सकता है कि यह पदस्थापन उनके साहस के बारे में कुछ कहे। रुचिपूर्ण बात यह है कि इब्रानी भाषा में कुछ आज्ञाएँ मात्र दो शब्दों के रूप में देखने को मिलती हैं (20:13-15)।

कौन सी व्यवस्था दस आज्ञाएँ तैयार करती हैं? यहूदावाद में, 20:2 में परमेश्वर की घोषणा कि वह कौन है, इस बात को दस में से एक आज्ञा के रूप में देखा गया है। अन्य लोग इस आयत की व्याख्या प्रस्तावना के रूप करते हैं, न कि इसे आज्ञाओं में से एक बताते हैं। यहूदी लोग तब "3-6 आयतों को एक साथ कर देते हैं जिससे कि दूसरी आज्ञा तैयार की जा सके जो अन्य ईश्वरों की पूजा और

किसी भी प्रकार के किसी चित्र के प्रयोग से मना करती है।"[1] रोमन कैथोलिक लोग भी "पारम्परिक रूप से 3-6 आयतों को मिलाकर एक समूह तैयार करते हैं परन्तु उन्हें पहली आज्ञा बताते हैं" और "फ़िर दसवीं आज्ञा को दो भागों में बाँटते हैं जिससे कि आवश्यक संख्या प्राप्त की जा सके।"[2] ये अन्तर तुलनात्मक रूप से महत्वहीन हैं क्योंकि पाठ्य की शिक्षा एक समान ही बनी रहती है फ़िर इसे कितने ही भागों में क्यों न बाँट दिया जाए। यह टीका नीचे दी गई व्यवस्था के अनुसार चलती है जिसका प्रयोग अधिकतर प्रोटेस्टेंट लोग करते हैं।

दस आज्ञाओं की गिनती[3]		
यहूदी	अधिकतर प्रोटेस्टेन्ट ग्रीक ऑर्थोडॉक्स फ़िलो और जोसेफ़स आरम्भिक कलीसिया	रोमन कैथोलिक लूथरन अगस्तीन
1. मैं परमेश्वर यहोवा हूँ (20:2)	मै परमेश्वर यहोवा हूँ (20:2) (परिचय)	मै परमेश्वर यहोवा हूँ (20:2) (परिचय)
2. कोई अन्य ईश्वर और मूर्ति न हो (20:3-6)	1. कोई अन्य ईश्वर न हों (20:3) 2. कोई मूर्ति न हो (20:4-6)	1. कोई अन्य ईश्वर और कोई मूर्ति न हो (20:3-6)
3. परमेश्वर का नाम (20:7)	3. परमेश्वर का नाम (20:7)	2. परमेश्वर का नाम (20:7)
4. सब्त (20:8-11)	4. सब्त (20:8-11)	3. सब्त (20:8-11)
5. माता-पिता (20:12)	5. माता-पिता (20:12)	4. माता-पिता (20:12)
6. हत्या (20:13)	6. हत्या (20:13)	5. हत्या (20:13)
7. व्यभिचार (20:14)	7. व्यभिचार (20:14)	6. व्यभिचार (20:14)
8. चोरी (20:15)	8. चोरी (20:15)	7. चोरी (20:15)
9. झूठा गवाह (20:16)	9. झूठा गवाह (20:16)	8. झूठा गवाह (20:16)
10. लालच (20:17)	10. लालच (20:17)	9. लालच 1 (20:17) 10. लालच 2 (20:17)

दस आज्ञाओं को सरलता से दो वर्गों में वर्गीकृत किया जा सकता है। चार आज्ञाओं का पहला वर्ग परमेश्वर के साथ व्यक्ति के लम्बावत संबंध का है: (1) "तू मुझे छोड़ दूसरों को ईश्वर कर के न मानना"; (2) "तू अपने लिये कोई मूर्ति खोदकर न बनाना"; (3) "तू अपने परमेश्वर का नाम व्यर्थ न लेना"; और (4) "तू विश्रामदिन को पवित्र मानने के लिये स्मरण रखना।" छः का दूसरा क्षैतिज वर्ग, व्यक्ति के अन्य मनुष्यों के साथ संबंधों को संचालित करता है: (5) "तू अपने पिता और अपनी

माता का आदर करना"; (6) "तू खून न करना"; (7) "तू व्यभिचार न करना"; (8) "तू चोरी न करना"; (9) "तू किसी के विरुद्ध झूठी साक्षी न देना"; (10) "तू लालच न करना।"

सारी आज्ञाओं में सर्वनाम "तू" एकवचन रूप में है।[4] संभावना यही है कि परमेश्वर ने ये वचन सारी मण्डली (19:9; 20:19) से कहे थे और एकवचन सर्वनाम का प्रयोग इस बात पर बल देने के लिए किया कि प्रत्येक इस्राएली व्यक्ति इन आज्ञाओं को मानने के लिए बाध्य है। एक वैकल्पिक दृष्टिकोण है कि ये आज्ञाएं इस्राएल को एक समूह के रूप में, "सामूहिक द्वितीय व्यक्ति में" संबोधित की गईं थीं।[5]

दस में से आठ आज्ञाएँ नकारात्मक स्वरूप में हैं ("तू नहीं करना"), और केवल दो सकारात्मक स्वरूप में हैं ("स्मरण" और "आदर")। क्रियाविशेषण "नहीं" (אַל, *लो)* इस बात पर बल देता है कि कोई भी क्रिया वर्जित है। फिर भी, नकारात्मक आज्ञाएं अपने सकारात्मक प्रतिरूप का सुझाव देती हैं। उदाहरण के लिए झूठी साक्षी देने की मनाही संकेत करती है कि व्यक्ति को सच्चा एवं निष्ठावान होना चाहिए।

दस आज्ञाओं को अन्ततः पत्थर की दो पट्टियों पर सुरक्षित किया गया और उन्हें वाचा एक संदूक में रखा गया (34:28; व्यव. 10:1-5), जो परमेश्वर और उसके वचन के मध्य निकट संबंध का सूचक था। संदूक में इन पट्टियों की उपस्थिति, लोगों को वाचा को पूरा करने के उनके दायित्व को भी स्मरण करवाती रहती। दस आज्ञाएँ, थोड़ी सी भिन्नता के साथ व्यवस्थाविवरण 5 में भी दोहराई गई हैं। उस परिच्छेद में, वचन नई पीढ़ी को, जो वाचा के देश में प्रवेश करने के लिए तैयार थी, कहे गए हैं; उन इस्राएलियों को इस वाचा को व्यक्तिगत रीति से अपनी स्वीकार करने के लिए उभारा गया।

प्रस्तावना (20:1, 2)

[1]तब परमेश्वर ने ये सब वचन कहे, [2]"मैं तेरा परमेश्वर यहोवा हूं, जो तुझे दासत्व के घर अर्थात मिस्र देश से निकाल लाया है।"

आयतें 1, 2. दस आज्ञाओं की प्रस्तावना में व्यवस्था के देने वाले की पहचान करवाई गई: **परमेश्वर ने ये सब वचन कहे।** व्यवस्था का दिया जाना इस कथन के साथ आरंभ हुआ कि परमेश्वर कौन है और उसने इस्राएल के लिए क्या किया है - **"मैं तेरा परमेश्वर यहोवा हूं, जो तुझे दासत्व के घर अर्थात मिस्र देश से निकाल लाया है।"** इस्राएल के लिए यह स्मरण करना महत्वपूर्ण था कि न केवल परमेश्वर को आज्ञाकारिता का आदेश देने का अधिकार था, वरन वह उसकी आज्ञाओं के निभाए जाने के योग्य भी था क्योंकि उसने उन्हें मिस्र से छुड़ाया था।

ये आयतें परमेश्वर और इस्राएल के मध्य औपचारिक वाचा के आरंभ को प्रतिबिंबित करती हैं। यह स्वामी-सेवक की वाचा थी, जैसी कि बड़े और छोटे

शासनों में सामान्यतः होती थी (उदाहरणस्वरूप, एक महान राजा और एक अधीनस्थ राजा)। इन संधियों में, बड़ा राजा (1) यह स्थापित करता था कि वह कौन है, (2) यह प्रकट करता था कि छोटे शासन के लिए उसने क्या किया है या करेगा, और फिर (3) स्पष्ट करता था कि सेवक राज्य को किन कानूनों और नियमों का पालन करना होगा। (अधिक जानकारी के लिये देखें *अतिरिक्त अध्ययन: वाचा।)*

1. परमेश्वर के प्रति निष्ठा (20:3)

3"तू मुझे छोड़ दूसरों को ईश्वर कर के न मानना"

आयत 3. दस में से पहली आज्ञा इस्राएलियों से परमेश्वर यहोवा के प्रति पूरी निष्ठा की माँग करती थी। उनके आस-पास का अन्यजाति मूर्तिपूजक संसार **अन्य ईश्वरों** के अस्तित्व में विश्वास रखता था। यह आज्ञा उन्हें एकमात्र सच्चे परमेश्वर की उपासना करने को बाध्य करती थी। इससे अन्य ईश्वरों का अस्तित्व असंगत हो जाता था। इस्राएल को परमेश्वर यहोवा ही की उपासना करनी थी और केवल उसी की। उन्हें केवल याहवेह के प्रति समर्पित रहना था (देखें व्यव. 6:4, 5)।

वाक्यांश **मुझे छोड़** (עַל־פָּנָי, *अल पने)* का शाब्दिक अनुवाद "मेरे सम्मुख" हो सकता है। इस वाक्यांश के, संदर्भ के आधार पर, भिन्न अर्थ हो सकते हैं। इसे इन रूपों में व्यक्त किया जा सकता है: (1) "मेरे सम्मुख" या "मेरी उपस्थिति में," (2) "मुझसे पहले" या "मुझसे अधिक पसन्द," (3) "मेरे अतिरिक्त" या "मेरे स्थान पर," (4) "मेरे होते हुए" या "मुझे चुनौती में।"[6] अनुवाद "मेरे सामने" कुछ पाठकों को गलत धारणा दे सकता है। संदर्भ के आधार पर, यहोवा इस्राएल से यह नहीं कह रहा था कि अन्य ईश्वरों की उपासना करना भी ठीक है जब तक वे उसे सर्वप्रथम रखें। वरन, वह उनकी संपूर्ण निष्ठा की माँग कर रहा था। लोगों को उसके अतिरिक्त किसी अन्य को ईश्वर मानना ही नहीं था (20:4-6)। यह तथ्य अनेकों अनुवादों में स्पष्ट किया गया है (NJB; NEB; TEV; CEV; NCV; LB; NLT)।

यह आज्ञा सबसे पहले आई क्योंकि यही सबसे आधारभूत थी। किसी भी व्यक्ति का प्रकृति, अन्य मनुष्यों, और स्वयं अपने प्रति रवैया इस बात पर निर्भर करता है कि वह परमेश्वर के बारे में क्या सोचता है। यह रोमियों 1:18-32 में स्पष्टता से चित्रित किया गया है, जहाँ पौलुस ने अन्य-जाति मूर्तिपूजकों पर घिनौने पापों का दोष लगाया। वे उन इतनी भयानक बातों के दोषी क्यों थे? क्योंकि वे एकमात्र जीवते सच्चे सृष्टिकर्ता परमेश्वर की उपासना छोड़कर, सृजी हुई वस्तुओं की उपासना कर रहे थे।

2. मूर्तिपूजा (20:4-6)

4"तू अपने लिये कोई मूर्ति खोदकर न बनाना, न किसी की प्रतिमा बनाना, जो आकाश में, या पृथ्वी पर, या पृथ्वी के जल में है। 5तू उन को दण्डवत न करना,

और न उनकी उपासना करना; क्योंकि मैं तेरा परमेश्वर यहोवा जलन रखने वाला ईश्वर हूँ, और जो मुझ से बैर रखते है, उनके बेटों, पोतों, और परपोतों को भी पितरों का दण्ड दिया करता हूं, ⁶और जो मुझ से प्रेम रखते और मेरी आज्ञाओं को मानते हैं, उन हजारों पर करूणा किया करता हूँ।"

आयत 4. दूसरी आज्ञा ने मूर्तियों के बनाने और उनकी उपासना करने को प्रतिबंधित किया। पारिभाषिक शब्द **मूर्ति** (פֶּסֶל, *पेसल)* क्रिया "तराशने" या "काटने" (פָּסַל, *पसल)* से संबंधित है। सामान्यतः यह ऐसी मूर्ति को दर्शाता है जिसे काठ या पत्थर में से काट कर बनाया गया है, अर्थात, एक "गढ़ी हुई मूर्ति" (KJV)।[7] इसके अतिरिक्त, वाक्यांश **किसी की प्रतिमा** किसी भी अन्य ऐसी मूर्ति के लिए पूरक था जो इस शब्द के अर्थ में न आती हो, जैसे कि ढलाई करके बनाई गई मूर्ति (देखें 20:23; 34:17; व्यव. 27:15)।

निम्न वर्णन के द्वारा यह प्रतिबंध और स्पष्ट हो जाता है: **जो आकाश में, या पृथ्वी पर, या पृथ्वी के जल में है**। यह भाषा सृष्टि के समय को स्मरण करवाती है, जब मनुष्य को "आकाश के पक्षियों," "समुद्र की मछलियों" "और सब रेंगने वाले जन्तुओं पर जो पृथ्वी पर रेंगते हैं," (उत्पत्ति 1:26, 28) अधिकार दिया गया था। सार यह, कि परमेश्वर ने इस्राएलियों को आज्ञा दी कि वे किसी भी सृजे गई वस्तु के प्रतिरूप की मूर्ति न बनाएँ (देखें व्यव. 4:15-19)।

आयत 5. लोगों को न तो मूर्तियों को बनाना था, न उनकी **उपासना** करनी थी, और न उनको **दण्डवत** करना था। आज्ञा का प्राथमिक उद्देश्य था लोगों को स्मरण करवाना कि परमेश्वर वस्तु नहीं है: उसे देखा, छुआ, तौला, या नापा नहीं जा सकता है। परमेश्वर आत्मा है (यूहन्ना 4:24), और इसलिए किसी भी भौतिक वस्तु के साथ उसकी तुलना नहीं की जा सकती है। इस्राएलियों को किसी भी ऐसे ईश्वर की उपासना नहीं करनी थी जिसका प्रतिरूप कोई मूर्ति हो, और न ही उन्हें अपने **परमेश्वर यहोवा** की कोई मूर्ति बनानी थी। जेम्स बर्टन कॉफमैन ने लिखा,

> इसके कारण गहन हैं। कोई भी धार्मिक प्रतिमा, अपने स्वरूप में, *गलत* है, क्योंकि जिसका वह कथित प्रतिरूप है उसका *झूठा* प्रकटीकरण है। वह जो भौतिक है किसी आत्मिक का प्रकटीकरण कैसे हो सकता है? वह जो निःसहाय है कैसे अनन्त सामर्थ्य का प्रतिरूप हो सकता है? वह जो नश्वर है कैसे अनन्त जीवन का स्वरूप हो सकता है? वह जिसमें कोई चेतना ही नहीं है अनन्त ज्ञान को कैसे दर्शा सकता है? वह जो मूक, अचेतन, दृष्टिहीन, और *मृतक* है परमेश्वर की अत्यावश्यक जीवंत वास्तविकताओं का और पवित्र धर्म का प्रकटीकरण कैसे हो सकता है?[8]

परमेश्वर के अभौतिक होने की यह समझ प्राचीन संसार में अनुपम थी। लोग प्रतिमाओं या मूर्तियों के स्वरूप में, जिन्हें स्वयं लोगों ने ही रचा था, अनेकों देवताओं की उपासना किया करते थे। वर्ष बीतने के साथ, इस्राएल ने बहुधा, मूर्तियों को बनाने और उनकी उपासना करने के द्वारा, जैसे कि पहली को, इस

दूसरी आज्ञा को भी तोड़ा (देखिए अध्याय 32)। किंतु यह आज्ञा जीवित वस्तुओं के चित्र या मूर्तियों को बनाना पूर्णतः वर्जित नहीं करती है, जैसा कि कुछ निष्कर्ष निकालते हैं (देखें 25:18-20)। वरन, यह *मूर्तियों को उपासना की वस्तु* बनाकर प्रयोग करना वर्जित करती है।[9]

परमेश्वर ने दूसरी आज्ञा के पालन के लिए कारण भी दिया, अपने आप को **जलन रखने वाला ईश्वर** बता कर, और यह कह कर कि **जो मुझ से बैर रखते है, उनके बेटों, पोतों, और परपोतों को भी पितरों का दण्ड दिया करता हूं**। इन कथनों से दो प्रश्न उभरते हैं।

1. परमेश्वर किस अभिप्राय से "जलन रखने वाला ईश्वर" है? शब्द "जलन रखने वाला" (קַנָּא, *कन्ना)* एक विशेषण है जिसका प्रयोग केवल परमेश्वर के वर्णन में हुआ है (20:5; 34:14; व्यव. 4:24; 5:9; 6:15)। इसका अर्थ है कि वह किसी प्रतिद्वन्दी को सहन नहीं करता है। केवल उसी की उपासना की जानी है, पाप को दण्डित करने के द्वारा वह अनास्था के प्रति असहनशीलता को दिखाता है। संभवतः परमेश्वर को जलन रखने वाले पति के समान देखा जा सकता है जो अपनी पत्नी के लिए सर्वोत्तम चाहता है और उसे किसी अन्य पुरुष के साथ साझा नहीं करता है। वॉरेन डब्ल्यू. रिस्बी ने स्पष्ट किया,

> जैसे कि माता-पिता अपने बच्चों के लिए और पति-पत्नी एक दूसरे के लिए वैसे ही परमेश्वर भी अपने बच्चों के लिए जलन रखता है और कोई प्रतिस्पर्धा सहन नहीं करता है (जकर्याह 1:14; 8:2)। पवित्रशास्त्र मूर्तिपूजा को व्यभिचार और वेश्यावृत्ति के तुल्य प्रस्तुत करता है (होशे 1-3; यिर्म. 2-3; यहेज. 16; 23; याकूब 4:4-5)। परमेश्वर अपने लोगों के विशिष्ट प्रेम के योग्य है और उसकी माँग भी करता है (निर्गमन 34:14; व्यव. 4:24; 5:9; 6:15)।[10]

2. परमेश्वर का पितरों के पाप के लिए बच्चों को दण्ड देना कैसे न्यायसंगत हो सकता है? यह कथन कि परमेश्वर ऐसा करता है समस्या उत्पन्न करता है, क्योंकि व्यवस्थाविवरण 24:16 और यहेजकेल 18:20 कहते हैं कि बच्चों को अपने पिता के पापों के लिए दण्ड नहीं सहना है। यहाँ कोई अन्तर्विरोध नहीं है क्योंकि निर्गमन 20:5 पाप के परिणामों की बात कर रहा है न कि पाप के दोष की। पिता का पाप उसके परिवार पर तीन या चार पीढ़ियों तक प्रतिकूल प्रभाव डाल सकता है। उसके बच्चे उसकी बुरी आदतों को सीख सकते हैं और उसके समान बन सकते हैं; फिर वे अपने ही पापों के कारण दुःख भोगेंगे।

पाप के परिणामों के अतिरिक्त - दुःख, बीमारी, अपमान, कैद, और शीघ्र मृत्यु - परिवार पर पीढ़ियों तक क्षति-चिन्ह छोड़ सकते हैं। इस्राएलियों ने बंधुवाई में जाने के द्वारा इस तथ्य को चित्रित किया। मासूम बच्चों को अपने माता-पिता और दादा-दादी के दोष के कारण निर्वासित होने का परिणाम भोगना पड़ा। संभवतः इस्राएल ने आज के पाठक की अपेक्षा बच्चों द्वारा माता-पिता के पाप के दण्ड को भोगने के सिद्धान्त को अधिक भली-भांति समझ लिया था, क्योंकि वे सामूहिक दोष के विचार से परिचित थे। जैसा कि डब्ल्यू. एच. गिस्पेन ने ध्यान किया, "इस

धमकी के संबंध में हमें स्मरण रखना चाहिए कि प्राचीन निकट पूर्व में व्यक्ति और कबीले, राष्ट्र, और परिवार के वृहद संदर्भ में उसके संबंधों का अवमूल्यन नहीं हुआ था जैसा आज अनेकों लोगों में देखने को मिलता है।"[11]

आयत 6. परमेश्वर ने अपने दण्ड देने की तुलना अपनी दयालुता के साथ की। "जो उससे बैर [प्रगट]" रखते हैं मूर्तियों की उपासना के द्वारा तीन से चार पीढ़ियों तक दुःख भोगेंगे (20:5)। इसकी तुलना में, परमेश्वर ने प्रतिज्ञा की **जो मुझ से प्रेम रखते और मेरी आज्ञाओं को मानते हैं, उन हजारों पर करूणा किया करता हूं।** पारिभाषिक शब्द "करुणा" (חֶסֶד, *चेसेद)* के संबंध में, डब्ल्यू. एच. गिस्पेन ने स्पष्ट किया,

> यह दयालुता की ओर, जिस पर किसी का कोई अधिकार या दावा नहीं है, संकेत नहीं करता है; उसके लिए इब्रानी में भिन्न शब्द है। परन्तु यह शब्द एक भलाई, एक दयालुता, एक कृपा जिसकी ओर एक संबंध के कारण कोई बाध्य हो जाता है, की ओर संकेत करता है ... परमेश्वर और इस्राएल के संदर्भ में यह बाध्य होना वाचा के कारण था: वाचा का प्रेम, जो परस्पर अधिकारों और दायित्वों के संबंध में व्यक्त होता था, जिसमें परमेश्वर मनुष्य को अपने साथ बाँध लेता है।[12]

तीन या चार पीढ़ियों और "हज़ारों" के मध्य की तुलना इस बात पर बल देती है कि परमेश्वर अनाज्ञाकारिता के दण्ड की अपेक्षा आज्ञाकारिता को कहीं अधिक पुरस्कृत करता है।

3. अलौकिक नाम (20:7)

7"तू अपने परमेश्वर का नाम व्यर्थ न लेना; क्योंकि जो यहोवा का नाम व्यर्थ ले वह उसको निर्दोष न ठहराएगा।"

आयत 7. तीसरी आज्ञा **परमेश्वर** के नाम की पवित्रता की रक्षा करती है। इसका प्राथमिक उद्देश्य परमेश्वर के **नाम** को झूठी शपथ में लेने से, इस्राएलियों को उसके नाम में शपथ लेकर फिर शपथ तोड़ने से, रोकना था (लैव्य. 19:12)। लेकिन इसका प्रयोग किया गया है, और किया जा सकता है परमेश्वर के नाम को गाली-गलौज और कोसने के लिए न लेने के लिए भी। नहूम एम. सारना ने कहा कि इब्रानी शब्द जिसका अनुवाद **लेना** (נָשָׂא, *नासा)* हुआ है उसका अर्थ है "उठा लेना" या "शपथ" और यहाँ पर "यह 'होंठों पर लेना' अर्थात, 'ईश्वरीय नाम लेना' का लघु रूप है।"[13] उसने यह भी ध्यान किया कि पारिभाषिक शब्द **व्यर्थ** (שָׁוְא, *शौ')* का अर्थ "झूठे में" भी हो सकता है; "यह अनेकार्थक होना किसी वैधानिक अभियोग में प्रमुखों द्वारा झूठी साक्षी देना, झूठी शपथ लेना, और ईश्वरीय नाम का अनुचित और ओछा उपयोग करना बहिष्कृत करता था।"[14]

बाद में अपने इतिहास में यहूदियों ने विश्वास करना आरंभ कर दिया कि परमेश्वर का नाम "याहवेह" (יהוה, *यहवह)* इतना पवित्र है कि उसका उच्चारण कदापि नहीं किया जा सकता है। संज्ञा "याहवेह" कहने के स्थान पर वे उसके स्थान

पर कोई अन्य शब्द डाल देते थे। उदाहरण के लिए, "याहवेह" या "परमेश्वर" के स्थान पर "स्वर्ग" प्रतिस्थापित कर दिया जाता था। जब वे पवित्रशास्त्र को ऊंची आवाज़ में पढ़ते थे तो वे "याहवेह" नाम को "अदोनाए" (אֲדֹנָי, *अदोनाए)* से प्रतिस्थापित कर देते थे, जिसका अर्थ था "मेरे प्रभु।" अंग्रेज़ी पवित्रशास्त्र सामान्यतः इसी पद्धति का अनुसरण करता है, "याहवेह" का अनुवाद लघु बड़े अक्षरों में Lord (प्रभु) करने के द्वारा, सामान्यतः विशिष्ट नामों के साथ किए जाने वाले लिप्यान्तरण करने के स्थान पर लघु बड़े अक्षरों के प्रयोग के द्वारा। फिर भी यह अनहोना ही होगा कि परमेश्वर ने चाहा हो कि उसके नाम का उच्चारण किया ही नहीं जाए।

4. विश्रामदिन (20:8-11)

[8]"तू विश्रामदिन को पवित्र मानने के लिये स्मरण रखना। [9]छः दिन तो तू परिश्रम कर के अपना सब काम काज करना; [10]परन्तु सातवां दिन तेरे परमेश्वर यहोवा के लिये विश्रामदिन है। उस में न तो तू किसी भांति का काम काज करना, और न तेरा बेटा, न तेरी बेटी, न तेरा दास, न तेरी दासी, न तेरे पशु, न कोई परदेशी जो तेरे फाटकों के भीतर हो। [11]क्योंकि छः दिन में यहोवा ने आकाश, और पृथ्वी, और समुद्र, और जो कुछ उन में है, सब को बनाया, और सातवें दिन विश्राम किया; इस कारण यहोवा ने विश्रामदिन को आशीष दी और उसको पवित्र ठहराया।"

आयतें 8-10. चौथी आज्ञा परमेश्वर का आदर करने और इस्राएल की बहलाए के लिए दी गई। परमेश्वर का आदर होता था जब इस्राएल, **विश्रामदिन** के दिन **काम-काज** को छोड़ कर, परमेश्वर में विश्वास व्यक्त करते थे कि वह राष्ट्र के लिए उपलब्ध करवाने में सक्षम है। उदाहरण के लिए, मन्ना को एकत्रित करने के द्वारा, उन्होंने परमेश्वर में विश्वास व्यक्त किया कि वह छः दिन में पर्याप्त भोजन देगा जिससे कि वे सातवें दिन विश्राम कर सकें (16:22-26)। सृष्टि के **छः दिन** स्मरण करने के द्वारा, विश्रामदिन का विश्राम परमेश्वर की सार्वभौमिकता तथा उसके द्वारा जीवन संभव किए जाने को प्रतिबिंबित करता था (उत्पत्ति 2:1-3)। इस्राएल का भला होता था क्योंकि विश्रामदिन उन्हें, तथा जितने इस्राएलियों के लिए काम करते थे उन्हें भी विश्राम करने और तरोताज़ा होने का अवसर प्रदान करता था (23:12; देखें मरकुस 2:27)।

विश्रामदिन को किस प्रकार **स्मरण** रखना था? दस आज्ञाओं में विश्रामदिन में उपासना करने के बारे में कुछ नहीं कहा गया है। विश्रामदिन के दिन उपासना और आराधनालय में जाना इस्राएल के इतिहास में बाद में आया। विश्रामदिन आराम करने का दिन था, आवश्यक नहीं कि उपासना करने का दिन भी हो। विश्रामदिन को **पवित्र रखने के लिए** परमेश्वर के लोगों को उस दिन आराधना करनी थी, ऐसी कोई आवश्यकता नहीं दी गई है, क्योंकि शब्द קָדַשׁ *(कादाश)* का अर्थ बस "पृथक,"

"अलग करना," या "पवित्र करना" है। कोई किसी भी एक दिन को विश्राम करने के लिए "पृथक" कर सकता है जैसे कि वह उपासना के लिए भी दिन को "पृथक" कर सकता है।

आयत 11. इस परिच्छेद में विश्रामदिन को मनाने का जो कारण दिया गया है वह ही कि परमेश्वर ने **छः दिनों में** सब कुछ **बनाया** और **सातवें दिन विश्राम किया**। इसीलिए परमेश्वर ने **विश्रामदिन को आशीष दी और उसको पवित्र ठहराया** (देखें उत्पत्ति 2:1-3)। इस्राएलियों की अगली पीढ़ी को परमेश्वर ने विश्रामदिन को मनाने का एक और कारण दिया: "और इस बात को स्मरण रखना कि मिस्र देश में तू आप दास था, और वहां से तेरा परमेश्वर यहोवा तुझे बलवन्त हाथ और बढ़ाई हुई भुजा के द्वारा निकाल लाया; इस कारण तेरा परमेश्वर यहोवा तुझे विश्रामदिन मानने की आज्ञा देता है" (व्यव. 5:15)।

विश्रामदिन को न केवल परमेश्वर की सृजन-शक्ति के स्मारक के रूप में मनाया जाना था, वरन उसके मुक्तिदाता होने की सामर्थ्य के स्मारक के रूप में भी। इन दोनों ही संबंधित घटनाओं - सृष्टि और छुड़ाया जाने - के महत्व ने इस्राएल पर इस आज्ञा को मानने के लिए बहुत बल दिया। बाद के वर्षों में, यहूदियों का अन्य किसी भी बात की अपेक्षा विश्रामदिन को मनाने पर बल देना, उन्हें अन्य लोगों से पृथक करता था।

कुछ जो मानते हैं कि मसीहियों को अभी भी विश्रामदिन को मनाना चाहिए, वे इसी आयत को लेकर कहते हैं कि यह सृष्टि के समय से दी गई चिरस्थायी आज्ञा है, जिसे दस आज्ञाओं में औपचारिक रीति से कहा गया है, और इस कभी रद्द नहीं किया गया है। वे दावा करते हैं कि वाक्य-खण्ड "विश्रामदिन को स्मरण रखना" का तात्पर्य है कि विश्रामदिन पहले से मनाया जा रहा था। इसके अतिरिक्त, क्योंकि यह कहा गया है कि परमेश्वर ने विश्रामदिन को आशीष दी और उसे पवित्र ठहराया, सृष्टि के वृतांत के तुरंत पश्चात (उत्पत्ति 2:3), इस आधार पर वे दावा करते हैं कि परमेश्वर ने *उस समय* विश्रामदिन को पवित्र करके पृथक किया और लोगों द्वारा उसे मनाया जाना अनिवार्य किया।

इस तर्क के प्रत्युत्तर में, पाँच तथ्यों को ध्यान रखना चाहिए। (1) कम से कम एक विश्रामदिन - और संभवतः और भी - मनाए जा चुके थे (16:22-30)। हो सकता है कि इस घटना के कारण परमेश्वर ने कहा हो "विश्रामदिन को स्मरण रखना।" (2) सृष्टि के वृतांत के साथ विश्रामदिन को पवित्र ठहराया जाने से अनिवार्यतः यह अर्थ नहीं निकाल लेना चाहिए कि परमेश्वर ने विश्रामदिन को सृष्टि के समय आशीष दी; यह केवल इतना सुझाव दे सकता है कि क्योंकि *तब* परमेश्वर ने विश्राम किया, इसलिए *अब* परमेश्वर (निर्गमन के लिखे जाने के समय) विश्राम दिन को आशीष देकर उसे पवित्र बना रहा था। (3) "स्मरण" का अनिवार्यतः यह तात्पर्य नहीं है कि इस्राएल पहले से विश्रामदिन मनाने का आदि था।[15] "*स्मरण* का केवल इतना अर्थ हो सकता है कि विश्वासयोग्यता के साथ मनाओ।"[16] (4) बाइबल में ऐसा कोई अभिलेख दर्ज नहीं है कि निर्गमन से पहले किसी ने विश्रामदिन मनाया हो। (5) चाहे पितरों के समय में विश्रामदिन को

मनाया भी गया हो, तो भी यह तथ्य हमें आज विश्रामदिन मनाने के लिए बाध्य नहीं करता है।

5. माता-पिता का आदर करना (20:12)

[12]"तू अपने पिता और अपनी माता का आदर करना, जिस से जो देश तेरा परमेश्वर यहोवा तुझे देता है उस में तू बहुत दिन तक रहने पाए।"

आयत 12. पांचवीं आज्ञा का ख़ाका बच्चों और माता-पिता के मध्य सही संबंधों को विकसित करने के लिए बनाया गया था। बच्चों को, **पिता** और **माता**, दोनों का **आदर** करना था। अपने माता-पिता का आदर करने के लिए (1) उनका आज्ञाकारी होना था (व्यव. 21:18-20); (2) उनसे और उनके बारे में श्रद्धा के साथ बातचीत करनी थी (लैव्य. 19:3); (3) उन्हें कोसना और मारना नहीं (निर्गमन. 21:15, 17; लैव्य. 20:9); और (4) जब वे अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति करने में असमर्थ हो जाएँ तो उनकी आवश्यकताओं को पूरा करना था। यीशु ने संकेत दिया कि मरकुस 7:9-13 में माता-पिता का आदर करने में इस चौथे अर्थ का अभिप्राय सम्मिलित था। उन्होंने फरीसियों को, जब वे दावा करते थे कि जो धन उन्हें माता-पिता के साथ बाँटना चाहिए था वह "कुर्बान," या "परमेश्वर को संकल्प" हो चुका (NIV), माता-पिता का आदर करने की आज्ञा को तोड़ने के लिए फटकार लगाई।

पौलुस द्वारा इस आज्ञा को मसीहियों पर लागू किया गया। इफिसियों 6:1-3 कहता है, "हे बालकों, प्रभु में अपने माता पिता के आज्ञाकारी बनो, क्योंकि यह उचित है। अपनी माता और पिता का आदर कर (यह पहिली आज्ञा है, जिस के साथ प्रतिज्ञा भी है)। कि तेरा भला हो, और तू धरती पर बहुत दिन जीवित रहे।"

पौलुस ने इस आज्ञा की पहचान की, यह "वह पहली ... जिसके साथ प्रतिज्ञा भी है।" अन्य आज्ञाओं में माने जाने के लिए कारण थे, परन्तु यह पहली आज्ञा थी जिसके साथ प्रतिज्ञा भी थी। निर्गमन 20:12 के अनुसार, प्रतिज्ञा यह थी कि **जिस से जो देश तेरा परमेश्वर यहोवा तुझे देता है उस में तू बहुत दिन तक रहने पाए।** इस्राएलियों के लिए इसका अर्थ था कि यदि वे अपने माता-पिता का आदर करें तो उन्हें कनान में बसे रहने की अनुमति मिली रहेगी।[17] जो अपने माता-पिता का आदर करते थे वे अपने पितरों और परमेश्वर के मध्य हुई वाचा का पालन करते थे और वे यहोवा से विमुख नहीं होते। अन्ततः इस्राएल को परमेश्वर द्वारा उन्हें दी गई भूमि में से निकाल ले जाया गया क्योंकि उन्होंने माता-पिता द्वारा उन्हें सिखाई गई व्यवस्था की बातों का पालन नहीं किया।

पौलुस द्वारा इस प्रतिज्ञा का अनुकूलन करने से अभिप्राय निकलता है कि जो बच्चे अपने माता-पिता के आज्ञाकारी रहेंगे वे अधिक अच्छा जीवन व्यतीत करेंगे ("कि तेरा भला हो") तथा दीर्घ कालीन जीवन भी ("और तू धरती पर बहुत दिन जीवित रहे")। पौलुस के शब्दों को अटूट प्रतिज्ञा नहीं, परन्तु एक सिद्धान्त के रूप में लेना चाहिए। सामान्यतः, जो बच्चे अपने माता-पिता के आज्ञाकारी होने और अधिकारियों के आधीन होना सीख लेते हैं वे, उनकी अपेक्षा जो ऐसा नहीं करते

हैं, अधिक भला और लंबा जीवन जीते हैं।[18]

6. हत्या (20:13)

[13]"तू खून न करना।"

आयत 13. छठी आज्ञा मानव जीवन की रक्षा के लिए दी गई थी। जिस इब्रानी शब्द को **खून** अनुवाद किया गया है वह है רָצַח *(रत्सक)*। अनुवाद "खून" इस संदर्भ में बहुत सामान्य है, जैसा कि इस तथ्य से विदित है कि व्यवस्था ने हर प्रकार के मार डालने को वर्जित नहीं किया था। उदाहरण के लिए, व्यवस्था नियंत्रित तो करती है, परन्तु युद्ध या मृत्यु दण्ड के लिए मना नहीं करती है। वास्तव में, कभी-कभी परमेश्वर ने इस्राएल को युद्ध में जाने की आज्ञा दी (गिनती 10:9; व्यव. 20:1), तथा कुछ अपराधों के लिए - हत्या करने सहित, उसने मृत्यु दण्ड की भी आज्ञा दी (निर्गमन 21:12; गिनती 35:16-21, 27, 30)। इसके अतिरिक्त शब्द *रत्सक* "लगभग सदा ही व्यक्तिगत शत्रु को मार डालने के लिए प्रयुक्त हुआ ह।"[19] छठी आज्ञा जिसे वर्जित करती है वह हत्या करना है, जानबूझकर और बुरे उद्देश्य से मानव जीवन को ले लेना।

यह वर्जित करना, अन्य स्थान पर दिए गए दण्ड की आज्ञाओं के साथ मिलाकर देखने से, जीवन के मूल्य पर बल देता है। मानव जीवन बहुमूल्य है क्योंकि वह परमेश्वर से प्राप्त हुआ है। परमेश्वर ने मनुष्य को अपने स्वरूप और समानता में बनाया और "उसके नथनों में जीवन का श्वास फूंक दिया" (उत्पत्ति 1:26, 27; 2:7; 9:6)।

मूसा के द्वारा दी गई व्यवस्था से मानव जीवन का मूल्य प्रगट है। उदाहरण के लिए, चोर के जीवित रहने का अधिकार उसके द्वारा पीड़ित व्यक्ति के अपने संपत्ति पर अधिकार से बढ़कर था। व्यवस्था के अनुसार, यदि संपत्ति का स्वामी किसी ऐसे चोर को मार डालता, जो उसके जीवन के लिए खतरा नहीं था, तो संपत्ति का स्वामी हत्या का दोषी था (22:3)। इसके अतिरिक्त, यदि कोई व्यक्ति किसी दूसरे को अनजाने में मार डालता और इसलिए मृत्युदण्ड का भागी नहीं होता, उसे फिर भी अपने किए का मूल्य चुकाना होता। वह भागकर किसी शरणनगर में जा सकता था (गिनती 35:22-28; व्यव. 19:1-10)। यदि वह हत्या से निर्दोष पाया जाता, तो उसे महायाजक की मृत्यु होने तक उस शरणनगर में ही रहना पड़ता था। यदि वह हत्या का दोषी होता तो "खून का पलटा" लेने वाला, जो न्यायालय (और समाज) की ओर से हत्यारे को दण्ड देने के लिए ठहराया जाता, उसे मार डालता। यह सारी प्रक्रिया व्यवस्था द्वारा नियंत्रित होती थी; यह हत्यारे को न्याय तक लाने की वैधानिक व्यवस्था थी। ऐसे समाज में जिसमें कोई स्थापित सेना या पुलिस बल नहीं था, न्याय की इससे अच्छी प्रक्रिया संभव नहीं थी।

7. व्यभिचार (20:14)

[14]"तू व्यभिचार न करना।"

आयत 14. सातवीं आज्ञा वैवाहिक संबंध की सुरक्षा के लिए थी। यह आज्ञा **व्यभिचार** - नियम विरुद्ध यौन संबंध, जहाँ कम से कम एक व्यक्ति विवाहित हो, का निषेध करती थी। मानवीय दृष्टिकोण से, पुराने नियम में व्यभिचार का पाप व्यभिचार करने वाले व्यक्ति के जोड़ीदार के विरुद्ध होता था। दूसरे शब्दों में, यदि कोई पुरुष किसी अन्य व्यक्ति की पत्नी के साथ व्यभिचार करता था, तो वह उस व्यक्ति के विरुद्ध पाप करता था, जिसकी पत्नी को उसने लिया था।

अन्ततः, व्यभिचार का पाप परमेश्वर के विरुद्ध अपराध था (उत्पत्ति 20:6; भजन 51:4)। जब पोतीपर की पत्नी ने यूसुफ को फुसलाना चाहा, तो उसने उत्तर दिया, "भला, मैं ऐसी बड़ी दुष्टता कर के परमेश्वर का अपराधी क्योंकर बनूं?" (उत्पत्ति 39:9)। परमेश्वर ने एक दूसरे के पूरक लिंग बनाए और विवाह की पद्धति स्थापित की (उत्पत्ति 2:18-25)। क्योंकि वह ही पुरुष और महिला को साथ जोड़ता है (मत्ती 19:6), इसलिए इस वाचा का उल्लंघन उसका अपमान है।

व्यभिचार को मना करने के द्वारा, सातवीं आज्ञा विवाह के स्थापित रहने में सहयोग देती थी। यह सुनिश्चित करने के लिए कि इस्राएल इस आज्ञा के महत्व को समझे, इसके उल्लंघन का दण्ड मृत्यु निर्धारित की गई थी (लैव्य. 20:10; व्यवस्थाविवरण 22:22)

जैसे-जैसे भिन्न नियम प्रकट किए गए, परमेश्वर ने "यौन अपराधों" के विषय में केवल "तू व्यभिचार न करना" से और अधिक कहा। उसने अनेकों प्रकार के यौन अपराधों को वर्जित किया, जिनमें समलैंगिकता, पशुओं के साथ यौन संबंध, और कौटुम्बिक व्यभिचार भी सम्मिलित हैं (लैव्य. 18:6-18, 22, 23; 20:11-17, 19-21)। संभवतः ये सभी सातवीं आज्ञा से संबंधित हैं; बहुत संभव है कि इस आज्ञा का उद्देश्य इन सभी और इनके जैसे अन्य पापों का सम्मिलित कर लेना था (देखें 1 तीमु. 1:10)।

8. चोरी (20:15)

[15]"तू चोरी न करना।"

आयत 15. आठवीं आज्ञा व्यक्तिगत संपत्ति की रक्षा करती थी। यह व्यक्तियों के संपत्ति रखने के अधिकार की पुष्टि करती थी - जो उस धारणा के प्रतिकूल है जो कहती है कि सारी संपत्ति या तो सार्वजनिक हो या शासन की हो। यह आज्ञा सिखाती थी कि व्यक्ति को अपनी संपत्ति से अनुचित रीति से वंचित नहीं करना चाहिए। वॉल्टर जे. हैर्रलसन ने कहा कि "[पुराना नियम] संपत्ति को उसके स्वामी के 'व्यक्तित्व' के फैलाव का एक प्रकार मानता है" जिससे कि चोरी के कार्य "व्यक्ति का उल्लंघन हैं।"[20]

व्यक्तिगत संपत्ति परमेश्वर, जो सब कुछ का मालिक है, से मिली भेंट थी। किसी व्यक्ति से **चोरी** करना परमेश्वर से चोरी करना था। विशिष्ट नियम इस बात का वर्णन करते थे कि चोरी क्या है और चोरी करने का क्या दण्ड होना चाहिए। चोरी को कभी जघन्य अपराध नहीं माना गया, न ही व्यवस्था ने कभी चोरी के लिए शरीर के स्वरूप को बिगाड़ने का अधिकार दिया - जैसा कि कुछ अन्य धर्मों के नियम देते थे।[21]

9. झूठी साक्षी (20:16)

[16]"तू किसी के विरुद्ध झूठी साक्षी न देना।"

आयत 16. नौवीं आज्ञा के लिए परिस्थिति न्यायालय की थी। यह आज्ञा न्यायालय में लोगों को झूठे अभियोगों से सुरक्षित रखने के लिए थी (देखें 23:1-3)। डेविड आर. वौरले,जूनियर, के अनुसार इस आज्ञा का प्राथमिक उद्देश्य उनके साथ व्यवहार है जो "झूठे गवाह हैं और दूसरे की भलाई में बाधा बनाते हैं।"[22] उंगलियों के निशान और डीएनए के नमूने लेने के दिनों से पूर्व के समय में, अपराध से संबंधित मुख्य प्रमाण गवाहों द्वारा उपलब्ध करवाना होता था। कम से कम दो या तीन गवाह होना अनिवार्य था; किसी एक ही की गवाही के आधार पर किसी को दोषी नहीं ठहराया जा सकता था (व्यव. 17:6; 19:15)। यदि गवाह सच्चे नहीं होते, तो परिणाम अन्याय होता। झूठी साक्षी के कारण व्यक्ति का सम्मान, संपत्ति, और जीवन भी जा सकता था (लैव्य. 19:15, 16; 1 राजा 21:8-14; मत्ती 26:59-61)। झूठी **साक्षी देने** का दण्ड वही था जो **पड़ोसी** की हानि करने के प्रयोजन का था (व्यव. 19:16, 17)।

इस आज्ञा का उद्देश्य, झूठे गवाहों से अभियुक्त की रक्षा के द्वारा, न्यायिक प्रक्रिया की सत्यनिष्ठा की निश्चितता को बनाए रखना था। निर्गमन से लेकर व्यवस्थाविवरण तक, अनेकों नियम जो इसके बाद आए इस सिद्धान्त की और व्याख्या करते हैं तथा उसे व्यक्तिगत परिस्थितियों पर लागू करते हैं। न्यायालय में झूठ बोलने से रोकने के अपने मूल उद्देश्य के अतिरिक्त, इस आज्ञा के अभिप्राय को पुराने नियम में और विस्तृत कर के धोखे वाले सब प्रकार के वक्तव्यों को वर्जित करने के लिए किया गया (होशे 4:2)।[23] कोई भी झूठ परमेश्वर के स्वभाव के विपरीत होता है, जो कि स्वयं समस्त सत्य का आधार है और कभी झूठ नहीं बोल सकता है (यूहन्ना 17:17; इब्रा. 6:18)।

10. लालच करना (20:17)

[17]"तू किसी के घर का लालच न करना; न तो किसी की स्त्री का लालच करना, और न किसी के दास-दासी, या बैल गदहे का, न किसी की किसी वस्तु का लालच करना।"

आयत 17. दसवीं आज्ञा व्यक्ति में मन से संबंधित है, क्योंकि लालच मन से

होता है। **लालच** करने का अर्थ है उस वस्तु की लालसा करना जो स्वयं की नहीं है। नए नियम में "लालच" का लोभ के साथ निकट संबंध है - अधिक, और अधिक वस्तुओं की अभिलाषा, "वस्तुओं" की ऐसी लालसा जिसकी कभी संतुष्टि नहीं हो सकती है (लूका 12:15; कुलु. 3:5)।

कुछ ने "लालच" करने का अर्थ दूसरों की वस्तुओं की लालसा करने से बढ़कर लगाया है; उनका विचार है कि यह पारिभाषिक शब्द दूसरों की वस्तुओं को अन्यायपूर्ण विधियों से प्राप्त करने से संबंधित है।[24] परन्तु यह अर्थ इस पूर्वधारणा पर आधारित हो सकता है कि दस आज्ञाएँ (वास्तव में, मूसा की समस्त व्यवस्था) केवल बाहरी कार्यों से संबंधित थी, और मनुष्य के विचारों तथा व्यवहार से नहीं। यह प्रमाण कि व्यवस्था मनुष्य के भीतरी एवं बाहरी, दोनों ही स्वरूपों से संबंधित है, यहाँ दसवीं आज्ञा में मिलता है, और इसकी पुष्टि समस्त बाइबल के अन्य परिच्छेदों से भी होती है। चाहे लालच करना वह जड़ हो जिससे अन्य पाप पनपते हैं, यह अपने आप में भी पाप है (रोमियों 7:7-11)।

जॉन आई. डरहैम ने सुस्पष्ट किया कि लालच करने से ये सभी दस आज्ञाएँ टूट जाएँगी। एक पुत्र की अपनी ही इच्छा को मनवाने की तीव्र लालसा उसे अपने माता-पिता का अनादर और हानि करने की ओर ले जा सकता है (21:15, 17)। बतशेबा के लिए दाऊद की हवस ने व्यभिचार और हत्या करवाई (2 शमूएल 11; 12)। नाबोत की दाख की बारी के लिए अहाब की लालसा का परिणाम झूठी साक्षी और हत्या हुआ (1 राजा 21)। भविष्यद्वक्ता अमोस के समय के लालची व्यापारी सब्त के दिन को तोड़ने और चोरी करने के दोषी हुए (अमोस 8:4-6)। यहूदा के लालची लोग जो यिर्मयाह भविष्यद्वक्ता के दिनों में रहते थे, संभवतः सभी आज्ञाओं का उल्लंघन करने के दोषी थे, परमेश्वर तथा उसके नाम के प्रति निर्मल भक्ति का उन्होंने अन्यजाति मूर्तिपूजा से सौदा कर लिया था (यिर्म. 7:1-15)।[25]

लालच को वर्जित करने में, **किसी के घर का लालच** एक व्यापक वाक्यांश प्रतीत होता है, जो उसकी सभी बहुमूल्य वस्तुओं को सम्मिलित कर लेता है, इस घटते क्रम में: उसकी पत्नी, पुरुष **दास**, स्त्री दासी, बैल, और गदहे। वाक्यांश **किसी की किसी वस्तु** में अन्य सभी वस्तुएँ सम्मिलित हो जाती हैं।

इस्राएल की प्रतिक्रिया (20:18-21)

[18]सब लोग गर्जन और बिजली और नरसिंगे के शब्द सुनते, और धुआं उठते हुए पर्वत को देखते रहे, और देख के, काँपकर दूर खड़े हो गए; [19]और वे मूसा से कहने लगे, "तू ही हम से बातें कर, तब तो हम सुन सकेंगे; परन्तु परमेश्वर हम से बातें न करे, ऐसा न हो कि हम मर जाएं।" [20]मूसा ने लोगों से कहा, "डरो मत; क्योंकि परमेश्वर इस लिए आया है कि तुम्हारी परीक्षा करे, और उसका भय तुम्हारे मन में बना रहे, कि तुम पाप न करो।" [21]और वे लोग तो दूर ही खड़े रहे, परन्तु मूसा उस घोर अन्धकार के समीप गया जहाँ परमेश्वर था।

आयतें 18, 19. यह लेख इस तथ्य को बल देता है कि परमेश्वर पर्वत पर उपस्थित था। **गरजने और बिजली और नरसिंगे के शब्द, और धुआं उठते हुए पर्वत** सब परमेश्वर की उपस्थिति के साक्ष्य थे। भय और काँपने की लोगों की प्रतिक्रिया समझ में आती है और उचित भी है। जब अपरिमित, पवित्र परमेश्वर, परिमित, पापी मनुष्य का सामना करता है तो मनुष्य के लिए लज्जित और भयभीत होने का पर्याप्त कारण होता है। इस्राएल का भय भी समझा में आता है क्योंकि परमेश्वर की पवित्र उपस्थिति भयप्रद थी। यदि कोई व्यक्ति तैयार नहीं था या किसी कारण से औचित्य की सीमाओं को लाँघ जाता, तो वह परमेश्वर की पवित्र उपस्थिति या उससे संबंधित पवित्र वस्तुओं के संपर्क में आने के कारण तुरंत मृत्यु के द्वारा दण्डित किया जा सकता था। अपने भय के कारण उन्होंने **मूसा** से विनती की कि **परमेश्वर** के स्थान पर वह ही उन से बोले जिससे वे न **मरें** (देखिए इब्रा. 12:19, 20)।

आयत 20. मूसा ने इस्राएलियों से कहा **डरो मत**। उसने यह भी कहा, "**क्योंकि परमेश्वर इस लिए आया है कि तुम्हारी परीक्षा करे, और उसका भय तुम्हारे मन में बना रहे, कि तुम पाप न करो।**" विभिन्न व्याख्याकर्ताओं के अनुसार, संभव है कि परमेश्वर उनके विश्वास, उनकी आज्ञाकारिता, उनकी श्रद्धा, उसके द्वारा स्थापित की गई सीमाओं के पालन की उनकी तत्परता, की परीक्षा कर रहा हो।[26] हो सकता है कि इस परीक्षा के द्वारा परमेश्वर का उद्देश्य हो कि अपने लोगों को शुद्ध करे, और उनके अन्दर अपनी महिमा और सामर्थ्य के लिए अभिमूल्यन विकसित करे। तब वे उसका भय मानेंगे, या उसका आदर करेंगे, और उसके विरुद्ध पाप नहीं करेंगे।

आयत 21. मूसा परमेश्वर से मिलने के लिए पर्वत के शिखर पर **बादल** में अपने स्थान को लौट गया। भयभीत लोगों ने, जिन्होंने भय के साथ मूसा को बादल में लोप होते हुए देखा, उन्होंने अचरज किया होगा कि अब उसका और उनका क्या होगा।

वाचा की पुस्तक की प्रस्तावना: व्यवस्था का देने वाला (20:22)

व्यवस्था का दूसरा भाग, 20:22-23:33 में परमेश्वर द्वारा मूसा को पर्वत पर दिया गया, और उसे "वाचा की पुस्तक" कहा जाता है (24:7)। इन नियमों को, जिन्हें विद्वतापूर्ण साहित्य में "वाचा संहिता" कहा जाता है, दस आज्ञाओं का विस्तार और स्पष्टीकरण है।

[22]तब यहोवा ने मूसा से कहा, "तू इस्राएलियों को मेरे ये वचन सुना: तुम लोगों ने आप ही देखा है कि मैं ने तुम्हारे साथ आकाश से बातें की हैं।"

आयत 22. इस खण्ड का परिचय व्यवस्था के स्त्रोत पर बल देता है: **प्रभु,** यहोवा। व्यवस्था के स्त्रोत के विषय इस्राएल में कोई संदेह नहीं होना चाहिए, क्योंकि परमेश्वर ने कहा, **"तुम ... ने आप ही देखा है कि मैं ने तुम्हारे साथ आकाश से बातें की हैं।"** यह कथन संकेत प्रदान करता है कि क्यों परमेश्वर ने मूसा को

व्यवस्था का विवरण देने से पहले सभी लोगों से बातें कीं: वह उन्हें विश्वास दिलाना चाहता था कि इन नियमों को देने वाला स्वयं यहोवा ही है।

यद्यपि वाचा की पुस्तक की प्रबंधन विधि को पूर्णतः पहचान पाना कठिन है, विशिष्ट नियम समूहों में प्रकट होते हैं। प्रत्येक समूह एक समान परिस्थितियों से संबंधित है और उनका समस्त के साथ व्यवहार प्रतीत होता है।

परमेश्वर की आराधना से संबंधित नियम (20:23-26)

23"तुम मेरे साथ किसी को सम्मिलित न करना, अर्थात अपने लिये चान्दी वा सोने से देवताओं को न गढ़ लेना। 24मेरे लिये मिट्टी की एक वेदी बनाना, और अपनी भेड़-बकरियों और गाय-बैलों के होमबलि और मेलबलि को उस पर चढ़ाना; जहाँ जहाँ मैं अपने नाम का स्मरण कराऊँ वहाँ वहाँ मैं आकर तुम्हें आशीष दूंगा। 25और यदि तुम मेरे लिये पत्थरों की वेदी बनाओ, तो तराशे हुए पत्थरों से न बनाना; क्योंकि जहाँ तुम ने उस पर अपना हथियार लगाया वहाँ तुम उसे अशुद्ध कर दोगे। 26और मेरी वेदी पर सीढ़ी से कभी न चढ़ना, कहीं ऐसा न हो कि तेरा तन उस पर नंगा देख पड़े।"

आयत 23. दस आज्ञाओं को और विस्तृत करने के लिए, परमेश्वर ने इन "नियमों" (21:1) को दूसरी आज्ञा (20:4) को कुछ भिन्न शब्दों में पुनः उल्लेखित करके देने द्वारा आरम्भ किया: "**तुम मेरे साथ किसी को सम्मिलित न करना, अर्थात अपने लिये चान्दी वा सोने से देवताओं को न गढ़ लेना।**" उसने पहली की अपेक्षा दूसरी से क्यों आरंभ किया? इस खण्ड के शब्द अन्य देवताओं को "उसके सम्मुख" (20:3) रखने की पहली आज्ञा के शब्दों को स्मरण करवाते हैं; व्यवस्था "मुझे छोड़" किसी अन्य देवता को बनाना वर्जित करती थी। दूसरी आज्ञा बहुत व्यावहारिक थी, यह निर्धारित करने में कि इस्राएलियों को क्या नहीं *करना* है, इसके स्थान पर कि उन्हें यह कहे कि उन्हें क्या नहीं सोचना या नहीं विश्वास करना है। यह वाचा की पुस्तक में पाए जाने वाले सभी नियमों के व्यावहारिक स्वरूप के अनुसार है।

आयत 24. यह स्पष्ट करने के पश्चात कि इस्राएलियों को क्या नहीं बनाना है, परमेश्वर ने स्पष्ट किया कि उन्हें क्या बनाना *है*: **मिट्टी की एक वेदी** जहाँ वे **होमबलि** और **मेलबलि** को उस पर **चढ़ा** सकते थे। क्योंकि होमबलि और मेलबलि से संबंधित नियम लैव्यव्यवस्था में बाद में आए, इसलिए हो सकता है कि यह परिच्छेद उन बलियों के लिए था जो पहले से चढ़ाए जा रहीं थीं परन्तु नियंत्रित नहीं थे। इन बलियों को चढ़ाने के स्थान का चुनाव परमेश्वर ने किया। उन स्थानों पर वह अपने **नाम का स्मरण** करवाएगा। वह लोगों के पास **आएगा** और उन्हें वहाँ **आशीष** देगा।

आयत 25. इस परिच्छेद में **वेदी** से संबंधित नियमों का, बाद में होमबलि की वेदी (27:1-8) के विषय दिए गए निर्देशों से कोई संबंध नहीं है। संभवतः, यह नियम उस समय के लिए था जब होमबलि की वेदी बनाई और समर्पित नहीं की गई थी, परन्तु यह जंगल की यात्रा के सारे समय प्रासंगिक रहे, क्योंकि इस्राएली

जल्दी-जल्दी स्थान बदलते थे और भिन्न स्थानों पर बलिदान चढ़ाते थे। बाद में, परमेश्वर ने बलिदानों के चढ़ाए जाने के लिए केवल एक ही स्थान स्थापित किया (देखें व्यव. 12:11-14)।

यह नियम केवल मिट्टी की वेदियाँ ही नहीं माँगता था (20:24), क्योंकि इसमें **पत्थर** की वेदी से संबंधित निर्देश भी जोड़े गए। वेदी को प्राकृतिक पत्थरों से बनाया जाना था, मनुष्य के हथियारों द्वारा **तराशे हुए पत्थरों** से नहीं। एक सुझाव है कि यह रोक सरलता के लिए थी। एक अन्य संभावना इससे ली गई है कि इब्रानी पारिभाषिक शब्द חָרֶב *(केरेब)*, जिसका अनुवाद "हथियार" हुआ है, वह "तलवार" के लिए सामान्यतः प्रयोग होने वाला शब्द है। एक तलवार (या तेज धार वाला हथियार) "संघर्ष का प्रतीक था, जबकि वेदी मेल-मिलाप का चिन्ह थी।"[27] एक तीसरा विचार है कि यह मनाही इस्राएलियों की प्रथा को कनानियों की प्रथा से भिन्न पहचान देने के लिए थी।[28]

आयत 26. साथ ही, इस्राएलियों को **सीढ़ी** वाली **वेदी** नहीं बनानी थी। यह नियम इसलिए दिया गया जिससे कि वेदी पर चढ़ते समय पुरुष का नंगापन उसके वस्त्रों में से न दिखाई दे (देखें 28:42)। ये आवश्यकताएँ संकेत करती हैं कि, तुलना में, जंगल में बनाई गई वेदियाँ छोटे और सादे ढाँचे होते थे, न कि अन्य जातियों की विशाल वेदियों के समान या बाद में जो भव्य वेदी सुलैमान के मंदिर में सामने की ओर खड़ी थी (2 इतिहास 4:1) उसके समान।

एक और संभावना, जो एल. डैनिएल हौक द्वारा सुझाई गई, है कि 20:24-26 में उल्लेखित वेदियाँ भिन्न प्रकार की थीं। उन्होंने "खुली हवा की वेदियों और तम्बू की वेदियों" में भिन्नता की[29] यह कहने के द्वारा कि खुली हवा की वेदियाँ कहीं भी बनाई जा सकती थीं और अनेकों प्रकार के उद्देश्यों के लिए प्रयोग होती थीं। ऐसी वेदियाँ अब्राहम, इसहाक, और याकूब द्वारा बनाई गई थीं, और मूसा द्वारा भी प्रयोग की गईं (17:14-16; 24:4-8)। साथ ही, तम्बू के बनाए जाने के बाद भी वे प्रयोग होती रहीं, जैसा कि यहोशू (व्यव. 27:5, 6; यहोशू 8:31), शाऊल (1 शमूएल 14:33-35), और एलिय्याह (1 राजा 18:23-38)। यदि ये वेदियाँ होमबलि की वेदी से भिन्न उद्देश्य के लिए प्रयोग की जाती थीं, तो भी वे मूसा की व्यवस्था का उल्लंघन नहीं कर रही थीं। यदि यह व्याख्या सही है, तो 20:24-26 के निर्देश उन खुली हवा की वेदियों के बनाए जाने को नियंत्रित करने के लिए हो सकते थे।

इन निर्देशों का विषय "अपनी आराधना में बाहरी ढांचों पर बल मत दो" हो सकता है। इस्राएलियों को स्मरण रखना था कि वे जंगल में से होकर वाचा के देश के लिए यात्रा में थे। उन्हें अनावश्यक विशाल वेदियाँ बनाने के लिए रुकने की आवश्यकता नहीं थी। डरहैम ने टिप्पणी की, कि यह नियम वाचा की पुस्तक के आरंभ के निकट उचित है क्योंकि यह इस बात पर बल देता है कि जहाँ भी उसके लोग थे परमेश्वर वहाँ उपस्थित था। यह निर्गमन में एक महत्वपूर्ण विषय है।[30]

अनुप्रयोग

एक अच्छी व्यवस्था (20:1-17)

अध्याय 20 में हम दस आज्ञाओं का दिया जाना मिलता है, जो मूसा की व्यवस्था का पहला भाग है। परमेश्वर ने इस्राएल के साथ जो वाचा बाँधी ये उसमें पहली शर्तें थीं। परमेश्वर ने कहा कि यदि इस्राएल उसकी आज्ञाओं का पालन करें, तो वे उसके लोग ठहरेंगे। इस्राएल ने कहा था कि वे उन सभी कार्यों को करेंगे जिनकी आज्ञा परमेश्वर ने दी थी। अब परमेश्वर ने उन सूचनाओं को बताना आरम्भ किया जो वह इस्राएल से करवाना चाहता था। सीनै पर जो आज्ञाएँ दीं गईं वे शेष व्यवस्था के लिए आवश्यक सिद्धांत और प्रतिनिधि भी हैं। उनके माध्यम से व्यवस्था को उस प्रकार देख सकते हैं जिस प्रकार परमेश्वर ने उसे दिया था।

हमें व्यवस्था को एक अच्छी व्यवस्था क्यों समझना चाहिए? नए नियम की आँखों से देखने के द्वारा, हम सोच सकते हैं कि व्यवस्था बुरी थी: यह केवल एक परछाई थी (इब्रा. 10:1), और एक परछाई निश्चित तौर पर "वास्तविक वस्तु" से निम्न होती है। पुरानी वाचा निम्न थी; नई उत्तम है (इब्रा. 8:6)। पुरानी व्यवस्था त्रुटिपूर्ण थी (इब्रा. 8:7)। इसका उद्देश्य हमें मसीह के पास लेकर आना था; चूंकि मसीह आ चुका है, तो यह अब प्रभाव में नहीं है (गला. 3:19, 23-25)। यह एक मृत्यु की सेवकाई लेकर आई (2 कुरि. 3:7)।

इसके साथ ही, नया नियम संकेत करता है कि मूसा की व्यवस्था एक अच्छी व्यवस्था थी। यह महिमा के साथ आई थी (2 कुरि. 3:7)। रोमियों 3:1, 2 कहता है कि यहूदियों को अन्यजातियों के ऊपर जिस कारण लाभ मिला था वह यह था कि उन्हें "परमेश्वर के वचन सौंपे गए थे।" रोमियों 7:12 कहता है, "इसलिये ... व्यवस्था पवित्र है, और आज्ञा भी ठीक और अच्छी है।" इब्रानियों दर्शाता है कि मसीह और उसकी वाचा पुरानी वाचा से "उत्तम" है, परन्तु उसका अर्थ यह नहीं है कि व्यवस्था "बुरी" थी; बल्कि, यह संकेत करता है कि यह "अच्छी" थी।

यीशु ने अपनी सामाजिक सेवकाई के दौरान व्यवस्था की निंदा नहीं की थी। बल्कि; उसने उन परंपराओं की निंदा की थी जो व्यवस्था के चारों और बढ़ रहे थे। व्यवस्था की नैतिक आवश्यकताएं अच्छी हैं। फिर, क्यों, व्यवस्था को वापस ले लिया गया? यह एक अच्छी व्यवस्था थी, परन्तु यह पाप को दूर न कर सकी (गला. 3:19, 22; इब्रा. 10:4)। लोगों को जीने के लिए उत्तम नियमों की आवश्यकता नहीं थी; उन्हें एक उद्धारकर्ता की आवश्यकता थी। इसी कारण पुरानी वाचा पूरी हो गई थी और नई वाचा को स्थापित कर दिया गया था।

व्यवस्था किस प्रकार से एक अच्छी व्यवस्था थी? व्यवस्था की भलाई को देखना सरल है। (1) यह इस्राएल के प्रति परमेश्वर के अनुग्रहपूर्ण कार्यों पर आधारित थी (19:3. 4; 20:1, 2)। यह व्यवस्था किसी विजेता के द्वारा थोपे गये कानूनों, या आज्ञाओं की खातिर नहीं थी जिसकी रुचि जीते गए लोगों की भलाई में नहीं थी। (2) इसने आज्ञापालन के पर्याप्त कारण दिए (देखें 20:12)। व्यवस्था के साथ आज्ञापालन की आशीषें और अनाज्ञाकारिता के श्राप भी थे (लैव्य. 26;

व्यव. 28)। (3) यह व्यापक थी। इसने केवल इस्राएल की आराधना के मानक ही तय नहीं किए, बल्कि प्रतिदिन के जीवन के सभी क्षेत्रों का नियंत्रित भी किया। यह इसी तरह इसकी नैतिक और आचार सम्बन्धी आवश्यकताओं में व्यापक थी। दस आज्ञाओं में किसी न किसी तरह से हर प्रकार के पाप के लिए मना किया गया है। (4) इसने विचारों और व्यवहारों तक को नियंत्रित किया। दसवीं आज्ञा है "तू किसी के घर का लालच न करना; न तो किसी की स्त्री का लालच करना, और न किसी के दास,दासी या बैल-गधे का-, न किसी की किसी वस्तु का लालच करना।" लालच करना कुछ ऐसा है जो मन में होता है। (5) इसने उन लोगों की रक्षा की जो दूसरे प्रकार से रक्षाहीन थे: दास (गुलाम), अपरिचित और विदेशी, विधवा और अनाथ, कंगाल और विकलांग। (6) इसने लोगों के विरुद्ध किए गए पापों के प्रति प्राणदण्ड दिया, परन्तु संपत्ति के विरुद्ध अपराधों के लिए नहीं (21:12; 22:1)। निकट पूर्व के सभी देशों की व्यवस्थाएं जिनमें चोरी तक के लिए मृत्युदण्ड दिया जाता था, मूसा की व्यवस्था इन सभी के विपरीत थी। (7) इसमें पूर्ण निष्पक्षता आवश्यक थी। निर्गमन 23:2, 3 संकेत करता है कि गवाहों का ईमानदार होना और न्यायियों का पक्षपाती न होना आवश्यक था। (8) इसमें एक व्यक्ति का अपने शत्रु के प्रति उचित व्यवहार आवश्यक था (23:4, 5)।

मूसा की व्यवस्था एक अच्छी व्यवस्था थी, परन्तु हम एक उत्तम व्यवस्था के अधीन जीते हैं। यदि इस्राएलियों ने व्यवस्था पाकर आनन्द किया, तो हमें नई व्यवस्था में कितना अधिक आनन्द करना चाहिए! आओ हम उस उत्तम व्यवस्था का पालन करने के लिए और भी अधिक प्रयत्न करें जो हमें मसीह के माध्यम से मिली है।

इस्राएल ने कभी भी पूर्ण रीति से व्यवस्था का पालन नहीं किया। इससे कोई फर्क नहीं पड़ता कि कोई व्यवस्था कितनी अच्छी है, यह इसलिए उद्धार नहीं कर सकती क्योंकि दोषपूर्ण मानव पूरी तरह से इसका पालन करने में अक्षम हैं। आओ हम आनन्द करने कि हमारे पास एक सिद्ध बलिदान - यीशु - है जो हमारे लिए बचाया जाना सम्भव बनाता है, यहाँ तक कि तब भी जब हम वह सब करने विफल हो जाते है जिसकी यहोवा को आवश्यकता है। हमें परमेश्वर की आज्ञाएँ का पालन निश्चय ही करना चाहिए; तो भी हमें यह स्मरण रखना चाहिए कि हमारा उद्धार हमारे व्यवस्था के पालन के द्वारा नहीं बल्कि, हमारी ओर से मसीह के बलिदान के कारण है।

दस आज्ञाओं का प्रचार (20:1-17)

दस आज्ञाएँ एक या अधिक उपदेशों के लिए भरपूर सामग्री प्रदान करती हैं। दस नियमों को एक उपदेश में बताया जा सकता है, जिसमें प्रत्येक आज्ञा एक बड़े बिंदु का कार्य कर सकती है। एक अन्य सम्भावना दो उपदेशों का विकास करना है। पहला उपदेश पहली चार आज्ञाओं को सम्मिलित कर सकता है, और दूसरा अन्तिम छः आज्ञाओं को सम्मिलित कर सकता है। एक अन्तिम दृष्टिकोण है इसे दस उपदेशों की एक श्रृंखला बनाना, जिसमें प्रत्येक अलग-अलग आज्ञाओं पर बात

करता है।

हमारे दो महान प्रेम (20:1-17)

यीशु ने "परमेश्वर से प्रेम करने" और "अपने पड़ोसी से प्रेम" करने के लिए कहा जो दो महान आज्ञाएँ थीं। "परमेश्वर से प्रेम" और "पड़ोसी से प्रेम" में क्या आवश्यक होता है? चूंकि व्यवस्था इन दो महान आज्ञाओं के ऊपर आधारित है (मत्ती 22:40), दस आज्ञाएँ चित्रण करती हैं कि "परमेश्वर से प्रेम" और "पड़ोसी से प्रेम" का क्या अर्थ है। हालाँकि, दस आज्ञाएं हमारे ऊपर प्रत्यक्ष तौर (केवल सब्त की आज्ञा के अलावा) पर लागू नहीं होतीं फिर भी इन्हें नए नियम में दोहराया गया है। इसी कारण, यदि हम परमेश्वर से प्रेम करें, तो हम पहली चार आज्ञाओं (या उनके समान) का पालन करेंगे। यदि हम दूसरों से प्रेम करें, तो हम अन्तिम छः आज्ञाओं के बराबर नए नियम का पालन करेंगे: हम अपने माता पिता का आदर करेंगे, परन्तु हम हत्या, चोरी, व्यभिचार, झूठी गवाही देना, या अपने पड़ोसी की वस्तुओं का लालच नहीं करेंगे।

पाप क्यों न करें (20:5)

"यदि परमेश्वर पाप को क्षमा करने में दयालु और अनुग्रहकारी है, तो हम पाप करने या न करने की चिंता क्यों करें?" इस प्रश्न का कई प्रकार से उत्तर दिया जा सकता है, परन्तु निर्गमन 20:5 इसका एक अच्छा उत्तर प्रदान करता है: पाप केवल आपको ही नहीं बल्कि अन्य लोगों को भी चोट पहुँचा सकता है, इसमें आने वाली पीढ़ियाँ भी सम्मिलित हैं। पितरों के पापों के कारण तीन और चार पीढ़ियों तक प्रभावित होने के परिणामों के उदाहरण भरपूर मात्रा में हैं।

विश्राम का एक दिन (20:10)

सब्त का एक उद्देश्य केवल इस्राएलियों ही नहीं बल्कि जो लोग उन पर आश्रित थे उन्हें भी विश्राम का एक दिन उपलब्ध करवाना था, इसमें उनके दास और काम करने वाले पशु भी सम्मिलित थे। यह तथ्य हमें सिखाता है कि हमें उन लोगों की भी चिंता करनी चाहिए जो हमारे ऊपर निर्भर हैं और इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि उनकी सभी आवश्यकताएं पूरी हों।

समाप्ति नोट्स

[1]आर. एलन कोल, *एक्सोडस: एन इन्ट्रोडक्शन एन्ड कमेन्ट्री*, टिन्डेल ओल्ड टेस्टामेन्ट कमेन्ट्रीज़ (डाउनर्स ग्रोव, इल्लिनोय: इन्टर-वर्सिटी प्रेस, 1973), 152. [2]उपरोक्त. [3]बी. डेवी नेपियर, *द बुक ऑफ़ एक्सोडस*, द लेमैन्स बाइबल कमेन्ट्री, वोल. 3 (अटलाण्टा: जॉन नोक्स प्रेस, 1963), 75 से लिया गया है। [4]डेविड आर. वोर्ली, से लिया गया है., "गॉड्स ग्रेशियस लव एक्स्प्रेस्ड: एक्सोडस 20:1-17," *रेस्टोरेशन क्वार्टरली* 14 (3d-4th क्वार्टर, 1971): 186. [5]मार्टिन नॉर्थ, *एक्सोडस*, ट्रांस. जे. एस. बाउडन, द ओल्ड टेस्टामेंट लाइब्रेरी (फिलेडेल्फिया: वेस्टमिनिस्टर प्रैस, 1962), 162. [6]देखें फ्रांसिस ब्राउन, एस. आर. ड्राइवर, और चार्ल्स ए. ब्रिग्स, *द ब्राउन-ड्राइवर-ब्रिग्स हीब्रू एण्ड इंगलिश लेक्सिकॉन* (बौस्टन: हॉटन, मिफलिन एण्ड को., 1906; रिप्रिंट, पीबौडी, मैसाचुसेट्स:

हैंड्रिक्सन पब्लिशर्स, 1997), 818-19. [7]परन्तु, पुराने नियम में बहुत बाद में पारिभाषिक शब्द *पेसल* का उपयोग मूर्तिकारों द्वारा ढलाई करके बनाई गई मूर्तियों के लिए हुआ (यशा. 40:19; 44:10)। [8]जेम्स बर्टन कॉफमैन, *कॉमेन्ट्री ऑन एक्सोडस, द सेकेंड बुक ऑफ मोसेस* (एबीलीन, टेक्सस: एसीयू प्रैस, 1985), 273. [9]*द एक्स्पोजिटर्स बाइबल कॉमेन्ट्री,* वोल. 2, *जेनिसिस-नम्बर्स* (ग्रैंड रैपिड्स, मिशिगन: जोंडरवैन, 1990), 422-23 में वॉल्टर सी. कैसर, जूनियर, "एक्सोडस।" [10]वॉरेन डब्ल्यू. वियरिस्बी, *बी डिलिवर्ड* (कोलराडो स्प्रिंग्स, कोलराडो, विक्टर: 1998), 110.

[11]डब्ल्यू. एच. गिस्पेन, *एक्सोडस,* ट्रांस. एड वैन डर मास, बाइबल स्टुडेंट्स कॉमेन्ट्री (ग्रैंड रैपिड्स, मिशिगन, रीजेंसी रेफरेंस लाइब्रेरी, ज़ौन्डरवैन पबलिशिंग हाउस, 1982), 192. [12]उपरोक्त, 192-93. [13]नहूम एम. सारना, *एक्सोडस,* द जेपीएस टोरह कॉमेन्ट्री (न्यू यॉर्क: ज्यूइश पब्लिकेशन सोसायटी, 1991), 111. [14]उपरोक्त। [15]कॉफमैन, 278. [16]विल्बर फील्ड्स, *एक्सप्लोरिंग एक्सोडस,* बाइबल स्टडी टेक्स्टबुक सीरीज़ (जोपलिन, मिस्सौरी: कॉलेज प्रैस, 1976), 429. (देखें मलाकी 4:4.) [17]उपरोक्त, 433-34. वाचा को बाद में अनेकों अन्य आज्ञाओं के साथ भी जोड़ा गया (व्यव. 4:40; 5:33; 6:1, 2; 11:8, 9; 22:6, 7; 30:15-18; 32:44-47)। [18]उपरोक्त, 434. [19]जे. फिलिप हयैट, *एक्सोडस,* द न्यू सेंच्युरी बाइबल कॉमेन्ट्री (ग्रैंड रैपिड्स, मिशिगन: विलियम बी. ईर्डमैंस पब्लिशिंग को., 1971), 214. परन्तु ऐसे भी उदाहरण हैं जहाँ रत्सक का प्रयोग या तो वैधानिक मृत्युदंड के लिए या खून का पलटा लेने के लिए (गिनती 35:27, 30) या अनजाने में मार डालने (व्यव. 19:3, 4, 6; यहोशू 20:3, 5, 6) के लिए हुआ है। [20]*द इंटरप्रेटर्स डिक्शनरी ऑफ द बाइबल,* एड. जॉर्ज आर्थर बट्टरिक (नैशविले: एबिन्गडन प्रैस, 1962), 4:571 में वॉल्टर जे. हैर्रलसन, "टेन कॉमान्डमेंट्स।"

[21]कुछ का मानना है कि आठवीं आज्ञा मुख्यतः किसी व्यक्ति को चुरा लेने या अपहरण करने के विरुद्ध है (व्यव. 24:7; 1 तीमु. 1:10)। (वौर्ली, 202.) [22]वौरले, 202. [23]फील्ड्स, 437. [24]उपरोक्त, 437-38. [25]जॉन आई. डरहैम, *एक्सोडस,* वर्ड बिबलिकल कॉमेन्ट्री, वोल. 3 (वैको, टेक्सस: वर्ड बुक्स, 1987), 298. [26]उपरोक्त, 303. [27]एफ. बी. ह्यूई, जूनियर, *एक्सोडस,* बाइबल स्टडी कॉमेन्ट्री (ग्रैंड रैपिड्स, मिशिगन: जौन्डर्वैन पबलिशिंग हाउस, 1977), 95. [28]डरहैम, 320. [29]"औल्टर्स," *डिक्शनरी ऑफ ओल्ड टेस्टामेंट: पेंटाट्यूक,* एड. टी. डेसमंड एलेक्जेंडर और डेविड डब्ल्यू. बेकर (डाउनर्स ग्रोव, इल्लिनोय: इन्टरवर्सिटी प्रैस, 2003), 33 में आई. डैनिएल हौक। [30]डरहैम, 320.